ECONSPEAK: A Journal of Advances in Management IT & Social Sciences,
Vol. 8, Issue 5, May 2018 Impact Factor 5.132 ISSN: (2231-4571)
www.skirec.org Email Id: skirec.org@gmail.com

नव सामाजिक आन्दोलन एवं जनहित याचिका ; विश्लेषणात्मक अध्ययन

Dr Alka

Post Doctoral Fellow (ICSSR)

Department of Political Science

University of Rajasthan, Jaipur

प्रस्तावना -

न्याय, वास्तविक अर्थों में कभी–कभी बदलते हुए समाज में एक न खत्म होने वाला चरण है, क्योंकि इसका उद्देश्य वांछित सामाजिक परिवर्तन करना है। न्यायिक गतिशीलता या न्यायिक रचनात्मकता एक सार्थक न्यायाधीश के लिये अनिवार्य है। एक न्यायाधीश जो न्यायिक सक्रियता से इंकार करता है वह न्यायाधीश स्वयं की भूमिका से ही इंकार कर देता है। कुछ न्यायाधीश, कुछ सक्रिय न्यायाधीश, कुछ समाजसेवी दिमाग वाले न्यायाधीशों को इस आंदोलन को प्रज्जवलित करना पड़ा। एक सिद्धान्त का आविष्कार किया जाना था जो आगे की प्रक्रिया को सरल बना सकता था ताकि आसान और सस्ता न्याय गरीबों के दरवाजों तक बिना किसी ज्यादा प्रयास के पहुंच सके, बस एक पत्र, पोस्टकार्ड या टेलीग्राम अदालत के न्यायिक क्षेत्र को प्रज्जवलित करने के लिये पर्याप्त हो, बिना किसी वकील, बिना किसी न्यायिक–शुल्क के, घर बैठे–बैठे ही न्याय प्राप्त करना परन्तु कई लोगों के लिये, न कि सिर्फ एक गरीब के लिये एक ऐसी राजनीति जो सार्वजनिक वादों, वर्ग कार्यवाही, प्रतिनिधित्व मुकदमों, सार्वजनिक कर्तव्यों को लागू करने के क्षेत्र को अनुमति दे सके। एक ऐसी रणनीति जिसके तहत न्यायालय आयोग नियुक्त करके तथ्यों की सच्चाई एवं अधिकारों के उल्लंघन की शिकायत की जानकारी प्राप्त कर सके। जिसके माध्यम से न्यायालय स्वतः संज्ञान (स्व–प्रेरण) के द्वारा हस्तक्षेप कर सके और जिसे लोक क्षति निवारणार्थ, लोक कर्तव्य, सामूहिक सामाजिक विसारित अधिकारों व हितों की सुरक्षा या लोक हित की रक्षा के लिये आरम्भ किया जा सके।

एक ऐसा हथियार जिसका इस्तेमाल करके न्यायपालिका इतनी सक्रिय हो जाए कि हमारे जांच–पड़ताल के मन्द व्यवस्था को एवं आपराधिक मामलों में परीक्षण को आघात–उपचार (आघातोपचार) दे सके एवं जो उचित रूप से पुरानी जमानत प्रणाली को अस्वीकार कर सकता है जिसमें गरीब कैदियों को केवल जमानत/प्रतिभूति के आधार पर

ही रिहा किया जा सकता है। एक उदार सिद्धान्त, जो हजारों विचाराधीन कैदियों को मुक्त कर सके, जो वर्षों से प्रतीक्षा कर रहे हैं, एक सिद्धान्त, जो घोषित करे कि राज्य कर्तव्य से बंधा है कि वह गरीबों, आंशिक अभियुक्तों और कैदियों को मुफ्त कानूनी सहायता दे। अनुच्छेद 21 की अभिनव एवं त्वरित व्याख्या आवश्यक थी ताकि तीव्र परीक्षण को मूलभूत अधिकार बनाया जा सके।

संकेत शब्द :- रचनात्मकता, अदालत, लोक कर्तव्य, न्यायिक गतिशीलता, न्यायपालिका, मूलभूत अधिकार

जनहित याचिका एवं सामाजिक आन्दोलन -

एक तकनीक जिसके माध्यम से हमारे शीर्ष न्यायालय अधिकारों का एक नया मानक शासन विकसित कर सके और वह राज्य को मनमाने तरीके से नहीं वरन् यथोचित रूप से जनहित के लिये तैयार कर सके। एक बड़ी राजनीति, जो सामाजिक न्याय और मानवीय अधिकार को मुफ्त कानूनी सहायता के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में परिवर्तित करके योगदान दे सकती है क्योंकि न्याय की पहुंच में बुनियादी मानव अधिकार हैं जिस पर स्वतंत्रता, गरिमा और समता से संबंधित अन्य अधिकार हैं। मुफ्त कानूनी सहायता के बिना गरीबों, दिवालिया लाखों लोगों के लिए न्याय की पहुंच सम्भव नहीं हो सकती थी।इस विश्लेषण से पता चलता है कि एक कारण था—गरीब लोगों के लिये, व्यापक रूप में समुदाय के लिये और जन समूह के लिये न्यायिक व्यवस्था में सुधार हो।

चुनौती — एक महान कारण था, एक गम्भीर चुनौती थी, जो न्यायपालिका के समक्ष थी। न्यायाधीशों को न्यायालय के अस्तित्व की वैधता को सिद्ध करने के लिये पुकारा गया था। उन्हें घोषित करना था कि न्यायालय गरीबों के लिये है। न्यायालय केवल कुछ शक्कर बैरनों या मद्यसार राजाओं के लिये नहीं है जिनके पास न्यायालय के दरवाजों को खोलने के लिये स्वर्ण चाबियां हैं। जब से भारतीय न्यायपालिका गरीबों और आम जनता को न्याय दिलाने के लिये संघर्ष कर रही है और उसके लिये एक नयी न्यायप्रणाली के लिये शोधरत है तब से जैसा कि न्यायमूर्ति भगवती कहते हैं :— मानवता के कम दृश्यतर क्षेत्रों के बारे में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिये जनहित याचिका का विकास हुआ। संविधान के अध्याय 3

और 4 के स्वप्नों को पूरा करने के लिये भी इस याचिका का विकास सम्भव हो सका तथा इस विधिक प्रक्रिया से समाज के कमजोर वर्गों के लिये भी हित सुनिश्चित किया जा सकता है, इसके पीछे मुख्य उद्देश्य हमारी न्यायप्रणाली को सुधारात्मक और आम आदमी की आवश्यकताओं के लिये संवेदनशील बनाना तथा सामाजिक परिवर्तन के रास्ते तैयार करना था।

इसका 'बौद्धिक आधार' संविधान के अनुच्छेद 39 के खण्ड (क) में निहित है जिसमें न्याय समान अवसर के रूप में सबको सुलभ कराने की आकांक्षा व्यक्त की गयी। यह राज्य को निर्देशित करता है कि वह अपने सभी नागरिकों को विधिक सहायता पहुंचाये ताकि किसी भी व्यक्ति के साथ अन्याय न हो। न्यायालय के इस दिशा में उठाये गये कदमों की दो स्तरों पर व्याख्या की जा सकती है– पहली, उस न्यायिक सत्ता को दृढ़ और मजबूत बनाना जिसको आपातकाल के दौरान (1975–77) कार्यपालिका के अतिरिक्त हस्तक्षेप के कारण न्यायिक प्रणाली आहत हुई थी तथा नागरिक अधिकारों का हनन हुआ था तथा दूसरी न्यायप्रणाली सामाजिक परिवर्तन की दिशा में मुख्य भूमिका निभाने वाली रही है तथा शासन के विधिक आधारों को भी वैधता प्रदान करती है।

जनहितवाद का अर्थ है सार्वजनिक हित या सामान्य हित के प्रवर्तन के लिये कानून की अदालत में शुरू की गई एक कानूनी कार्रवाई जिसमें लोक या समुदाय के वर्ग के वित्तीय या कुछ हित होते हैं जिससे उनके कानूनी अधिकार या दायित्व प्रभावित होते हैं। 'जनहित' का अर्थ है जनता के व्यापक हित, जनता का कल्याण और जनता का हित। वाद शब्द का अर्थ है सभी कार्यवाहियों सहित एक कानूनी कार्रवाई। जो एक अधिकार या उपाय की मांग के उद्देश्य से कानून की अदालत में शुरू किया गया। इस प्रकार अभिव्यक्ति जनहितवाद का अर्थ है – जनता के लाभ के लिए या किसी सार्वजनिक शिकायत को दूर करने के लिये आयोजित कोई मुकदमेबाजी। साधारण अर्थ में जनहित याचिका का मतलब है कोई भी सार्वजनिक उत्साहों नागरिक संविधान के अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय में अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय में और आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 133 के तहत मजिस्ट्रेट की अदालत के समक्ष याचिका दायर करके लोक कल्याण के लिये अदालत का रूख कर सकता है।

जनहित याचिका की अवधारणा के बीज को शुरू में कृष्णा अय्यर जे. द्वारा 1976 में मुम्बई कामगार सभा बनाम अब्दुल भाई[1] में बोया गया था। इसके बाद इसकी शुरूआत अखिल भारतीय शोषित कर्मचारी संघ (रेलवे) बनाम भारत संघ[2] में की गई जिसमें श्रमिकों के एक गैर पंजीकृत संघ को आम शिकायतों के निवारण के लिये संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिका दायर करने की अनुमति दी गई थी। फर्टीलाइजर कॉरपोरेशन कामगार संघ बनामभारत संघ[3] में इस अवधारणा का विकास किया गया। न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर एवं न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती ने माना कि 'सुने जाने के अधिकार' को समय की चुनौतियों का सामना करने के लिये उदारीकृत कर देना चाहिये। जहाँ विधिक गलती हो, वहाँ विधिक उपचार भी हो, को इतना विस्तृत कर देना चाहिये कि वह सार्वजनिक सेवाभावी नागरिकों या संगठनों के सभी हितों को सार्वजनिक स्त्रोतों के संरक्षण की गंभीर चिंता एवं सार्वजनिक शक्ति की दिशा एवं सुधार के साथ समाहित कर ले ताकि त्रिकोणात्मक पहलुओं तक न्याय विस्तृत हो। इसके बाद एस.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ में जनहित याचिका का विचार फलने–फूलने लगा। इसने अदालत को जनता की शिकायतों को सुनने और प्रमुख सामाजिक मुद्दों पर न्याय प्रदान करने में सक्षम बनाया।

न्यायमूर्ति पी.एन.भगवती का मानना था कि न्यायालय को बुनियादी मानव–अधिकारों से वंचित लोगों के बड़े पैमाने पर न्याय तक पहुंच प्रदान करने के लिये नए तरीकों और रणनीतियों का नवाचार करना होगा, जिनके लिये स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है। जनहित वाद का एक प्रारम्भिक वाद जो हुसैनारा खातून बनाम बिहार राज्य का था, उसमें बिहार में अंडर–ट्रायल कैदियों की रिहाई की गई जिनमें से कुछ को कानून के तहत अधिकतम दंडनीय कारावास अवधि से अधिक अवधि के लिये अंडर–ट्रायल के रूप में कैद किया गया या ट्रायल की प्रतीक्षा कर रहे थे। डॉ0 उपेन्द्र बक्शी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में दिल्ली विश्वविद्यालय के दो प्राध्यापकों के द्वारा आगरा के संरक्षित घर में रहने वाले व्यक्तियों का अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करने, अमानवीय दशाओं में होने के कारण उनके सांविधानिक अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये पत्र द्वारा लोकहित मुकदमा दायर किया। उक्त पत्र को याचिका मानते हुए दोनों प्रोफेसर्स को समुचित याचिका के लिये कार्यवाही

करने की अनुमति दी गई ताकि संरक्षित घर में निवास करने वाले व्यक्तियों को, उनके सांविधानिक अधिकार मिल सकें तथा न्यायिक प्रतितोष मिल सके।

जनहित याचिका ने एक नया आयाम प्राप्त किया– 'पत्रोचित न्यायाधिकार' जो कि 'सुनील बत्रा बनाम देहली एडमिनिस्ट्रेशन' का था। इसमें मृत्यु की सजा के तहत एक कैदी ने जेल के वार्डन द्वारा दूसरे कैदी पर अत्याचार के संबंध में न्यायाधीश को पत्र के माध्यम से सूचित किया था। न्यायालय ने पत्र को रिट याचिका मानकर अनेक दिशा–निर्देश जारी किये। बत्रा के मामले के वाद न्यायिक उपचार की गतिशील भूमिका, बन्दी प्रत्यक्षीकरण को एक बहुमुखी जीवन शक्ति और परिचालन उपयोगिता प्रदान करती है, जो कानून की हीलिंग उपस्थिति को छिपी सेल की गोपनीयता के भीतर भी स्वतंत्रता के गढ़ के रूप में प्रतिष्ठित करती है। इस मामले में न्यायालय ने बन्दी प्रत्यक्षीकरण के क्षेत्र को काफी विस्तृत करते हुए निर्धारित किया कि कैदी न केवल स्वाधीनता का अधिकार रखता है वरन् वह सांविधानिक अधिकार को प्रभावी बना सकता है जिसके लिये वह बन्दी रहते हुए भी हकदार है। परमानन्द कटारा बनाम भारत संघ : इसमें याचिकाकर्ता ने समाचार पत्र में प्रकाशित रिपोर्ट – 'कानून घायलों को मरने में मदद करता है' को उल्लिखित करते हुए उच्चतम न्यायालय से विशिष्ट दिशा जारी करने की मांग की। उपचार के लिये लाए गए प्रत्येक नागरिक को जीवन को संरक्षित करने के लिये तुरन्त चिकित्सा सहायता दी जानी चाहिये और उसके बाद ही प्रक्रियात्मक आपराधिक कानून को संचालित करने की अनुमति दी जानी चाहिये। ''लापरवाही से होने वाली मौत से बचने के लिए और इस तरह के निर्देश के उल्लंघन की स्थिति में, लापरवाही के लिए किसी भी कार्रवाई के अलावा, उचित मुआवजा स्वीकार होना चाहिए।'' सर्वोच्च न्यायालय ने इसके लिये उचित निर्देश जारी किये।

एस.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ के मामले में 7 न्यायाधीशों की पीठ ने बार एसोसिएशनों के लोकस–स्टैंडी को जनहित याचिका के माध्यम से रिट दायर करने के लिये मान्यता दी। इस विशेष मामले में, यह स्वीकार किया गया कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को मनमाने ढंग से स्थानान्तरित करने की कार्यकारी नीति पर सवाल उठाने में उनका वाजिब हित था।

लोकस स्टैंडी के संबंध में कहा गया कि इसलिये हम यह मानते हैं कि पर्याप्त हित रखने वाला जनता का कोई भी सदस्य सार्वजनिक कर्त्तव्यों के उल्लंघन से या संविधान या कानून के कुछ प्रावधानो के उल्लंघन से होने वाली सार्वजनिक क्षति के लिये न्यायिक निवारण के लिये कार्रवाई कर सकता है एवं ऐसे सार्वजनिक कर्तव्य को लागू करने एवं संवैधानिक या वैधानिक प्रावधानों का पालन करने की मांग कर सकता है।

पीपल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ के मामले में भारत की सरकारी एजेंसियों के खिलाफ एक याचिका लाई गई, जिसमें कम उम्र के मजदूरों के काम करने और निर्धारित वैधानिक न्यूनतम मजदूरी के स्तर से नीचे के भुगतान पर सवाल उठाया गया था, जो नई दिल्ली में तत्कालीन आगामी एशियाई खेलों के लिये सुविधाओं के निर्माण में शामिल थे। न्यायालय ने इन प्रथाओं को गंभीरता से लिया और फैसला दिया कि उन्होंने संवैधानिक गारंटी का उल्लंघन किया है। इसी प्रकार बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ ने सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान बंधुआ मजदूरी की सदियों पुरानी प्रथा की व्यापक घटनाओं की ओर आकर्षित किया था जो संवैधानिक निषेध के बावजूद बनी हुई है।

श्रीराम फूड एण्ड फर्टीलाइजर मामले में में न्यायालय ने नियोक्ताओं को खतरनाक रसायनों और गैसों के उत्पादन की जांच करने के लिये निर्देश जारी किये हैं जो श्रमिकों के स्वास्थ्य को खतरे में डालते हैं।

लिंग न्याय के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम था–विशाखा बनाम राजस्थान राज्य में निर्णय। इस मामले में याचिका एक सामाजिक कार्यकर्ता के सामूहिक दुष्कर्म से उत्पन्न हुई थी। उसमें अदालत ने महिलाओं के खिलाफ भेदभाव के सभी रूपों (सीडा) के उन्मूलन के लिये कन्वेशन के पाठ को लागू किया और कार्यस्थलों के पाठ को लागू किया और कार्यस्थलों पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न से निपटने के लिये निवारण तंत्र व्यापित करने के लिये दिशा–निर्देश तैयार किये। यह निर्णय विधायिका के क्षेत्र में अतिक्रमण करने के लिये आलोचना का विषय बना।

मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक मानव में जन्मजात हैं। मानव अधिकार विश्वभर में मान्य व्यक्तियों के वे अधिकार हैं जो उनके पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिये अत्यावश्यक हैं। विश्व निकाय ने 1948 में मानव अधिकारों की

सार्वभौम घोषणा को अंगीकार और उद्घोषित किया। इस घोषणा के पश्चात् मानव अधिकारों की अभिवृद्धि और पालन के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ ने अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा 1966 को अंगीकार किया। मानव अधिकार का संरक्षण अधिनियम, 1993 मानव अधिकार को निम्न प्रकार से परिभाषित करता है –

मानव अधिकार से प्राण, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा से संबंधित ऐसे अधिकार अभिप्रेत हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत किये गए हों या अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सचिविष्ट और भारत में न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय हैं। मानव अधिकार, जन्मजात अधिकार होने के नाते, सभी व्यक्तियों में अन्तर्निहित हैं चाहे वे किसी भी जाति, नस्ल, धर्म, लिंग या राष्ट्रीयता के हों। ये अधिकार सभी व्यक्तियों के लिये आवश्यक हैं जैसे कि वे उनकी स्वतंत्रता और गरिमा के अनुरूप हैं और वे भौतिक, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक कल्याण के संवाहक हैं। मानव के लिये उनके अत्यधिक महत्व के कारण मानव अधिकारों को कभी–कभी मौलिक अधिकार, आधारभूत अधिकार एवं जन्मजात अधिकार भी कहते हैं। मनु द्वारा सूत्रबद्ध किये गए नागरिक और कानूनी अधिकारों को कौटिल्य के अर्थशास्त्र ने विस्तृत कर दिया जिसने आर्थिक अधिकारों को भी शामिल किया। मानव अधिकारों की अवधारणा भारत के लिये नई नहीं थी। ये उसकी संस्कृति की श्वांस में थे। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भारतीय दर्शन है, भारतीय इतिहास मानवीय गरिमा की प्रमुखता के उदाहरणों से परिपूर्ण है जिनमें कुछ शासकों, अशोक, विक्रमादित्य, अकबर, जहांगीर में न्याय के लिये जोश था। संविधान का अनुच्छेद 253 संसद को किसी अन्य देश या देशों के साथ किसी संधि, समझौते या परंपरा या किसी भी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन या संगठन या अन्य निकाय द्वारा लिये गए निर्णय को लागू करने की दिशा में कानून बनाने के लिये सशक्त करता है।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के अधिनियम के साथ, संयुक्त राष्ट्र की महासभा की घोषणा जो मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को अपना रही थी, वह राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उनकी प्रभावी मान्यता एवं पालन को सुनिश्चित करने के लिये प्रगतिशील साधनों की परिकल्पना कर रही थी।1993 के अधिनियम में मान्यता प्राप्त अधिकार इस प्रकार वे अधिकार हैं जिन्हें लागू किया जा सकता है। यहाँ तक कि इस

तरह के अधिनियमन के अभाव में भी राज्य नीति के निदेशक तत्वों के विरूद्ध चलाई जाने वाली कार्रवाई को सार्वजनिक हित के विपरीत बताया गया है। इसी आधार पर नीति निदेशक तत्वों की प्रगति में की गई कार्रवाई सार्वजनिक हित को बढ़ाएगी। अंतर्राष्ट्रीय संविदा के प्रासंगिक प्रावधानों के संदर्भ में, राज्य पक्ष उन अधिकारो को लागू करने की दिशा में विधायी या अन्य उपाय करने के लिये बाध्य है, जो संविधान के भाग IV में वर्णित हैं। संविधान के भाग III में निहित मौलिक अधिकारों को इस आधार पर समाप्त नहीं किया जा सकता कि भारत के संधि दायित्वों को लागू करने के उद्देश्य से इस तरह का समापन आवश्यक है। एक संधि के प्रावधानों के तहत और विधायी मंजूरी के बिना किसी व्यक्ति को हिरासत में रखा जाना अवैध है क्योंकि इसमें किसी व्यक्ति को व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करने की मात्रा है, ऐसी व्यक्तिगत स्वतंत्रता कानून से स्थापित प्रक्रिया के अलावा वंचित होने में सक्षम नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार उपकरणों को स्वतंत्रता के उल्लंघन के मामलों में सुधारात्मक उपायों के निर्माण के तौर पर देखा जा सकता है। एक गैर–नागरिक को भी जीवन और स्वतंत्रता के मूल अधिकार प्राप्त हैं। जनहित याचिका समाज में समानता के संवैधानिक लक्ष्य को प्राप्त करने और राज्य कार्रवाई में निष्पक्षता को बढ़ावा देने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है। उपयुक्त संस्थागत प्रवर्तन तंत्र की अनुपस्थिति में, जनहित याचिका कानून के समक्ष समानता और कानून के समान संरक्षण की संवैधानिक प्रत्याभूति की सेवा में एक न्याय प्रशासन उपकरण के रूप में स्वागत किया जा सकता है। संविधान राज्य को निर्देश देता है कि वह भारत के क्षेत्र के भीतर किसी भी व्यक्ति को 'कानून के समक्ष समानता' या 'कानून के समान संरक्षण' से वंचित न करे। इस तरह की गारंटी राज्य नीति के निदेशक तत्वों को प्रभावी बनाने के लिये कानून बनाने और लागू करने के लिये प्रासंगिक है।

कानून के समक्ष समानता की अवधारणा आय में असमानताओं को कम करने और न केवल व्यक्तियों वरन् लोगों के समूहों के बीच स्थिति, सुविधाओं और अवसरों में असमानताओं को कम करने अपने नागरिकोंु को आजीविका के पर्याप्त साधनों की सुरक्षा और समाज के कमजोर वर्गों विशेष रूप से अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के

शैक्षणिक और आर्थिक हितों को बढ़ाने एवं उनका सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से बचाने के लिये ध्यान देती है। यह कार्य निःसन्देह व्यवस्थापिका का है। हालांकि संवैधानिक व्याख्या के लिए हर अवसर या मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिये न्यायिक प्रक्रियाएं होती हैं जो कानून के शासन को मजबूत बनाती है। कार्यपालिका के कार्य में निष्पक्षता एक संवैधानिक जनादेश है। न्यायालय यह परीक्षण करेगा कि क्या प्रशासनिक कार्रवाई निष्पक्ष है और अनुचितता के कलंक से मुक्त है और इसने पर्याप्त मानदंडों का पालन किया है।

कानून का नियम न केवल शासन की एक नियामक प्रक्रिया है वरन् संवैधानिक उद्देश्यों और लक्ष्यों को बढ़ावा देने वाला शासन भी है। राज्य सरकार द्वारा अध्यादेश बनाने की शक्ति का दुरूपयोाग और मानवाधिकारों का उल्लंघन गंभीर संस्थागत लापरवाही के उदाहरण हैं जो कानून के नियम की उपेक्षा करते हैं।

मतपत्र साधन, जिसके द्वारा लोकतांत्रिक राजनीति में एक मतदाता, उम्मीदवारों के बीच अपनी पसंद व्यक्त करता है, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में समुपस्थित है। सरकार के मामलों और नीतियों के निर्माण के बारे में जानने का अधिकार समान रूप से सुनिश्चित है। यह इस व्यापक संदर्भ में है कि सार्वजनिक अधिकारियों के पास निजता के अधिकार के अलावा कोई संरक्षित निजी क्षेत्र नहीं है जिसे सभी नागरिकों के लिये प्रासंगिक मान लिया गया है। पूर्व सेंसरशिप का लागू होना, प्रकाशनों का निषेध, प्रवेश पर प्रतिबंध का लागू होना, निश्चित सीमाओं में परिसंचरण, निजी या व्यावसायिक हित, सार्वजनिक हित आयाम उस प्रतिबंध के साथ मेल खाता है जो लगाया जा सकता है।

जनहित याचिका का उपयोग अदालतों द्वारा संवैधानिक दायित्व के निर्वहन में किया जा सकता है, ताकि मानव सम्मान और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा के साथ जीवन के अधिकार को लागू किया जा सके। सर्वोच्च न्यायालय ने गरिमा के साथ मृत्यु के अधिकार को भी मूल अधिकार माना है। टर्मिनल बीमारी वाले व्यक्ति निष्क्रिय इच्छा मृत्यु के लिये 'जीवित इच्छा' कर सकते हैं। संविधान पीठ ने गैर सरकारी संगठन काम्न कॉज की जनहित याचिका पर यह फैसला सुनाया।

निष्कर्ष -

न्यायिक सक्रियता के तहत अदालतों को निःसंदेह कानून लागू करने या उसकी व्याख्या करने का अधिकार है लेकिन उनके पास कानून बनाने अथवा उसमें बदलाव करने का अधिकार नहीं है। जनहित कानून को विनियमित करने के लिये 1996 में राज्यसभा में एक विधेयक लाया गया और प्रधानमंत्री ने 2007 में न्यायालय को उसकी मर्यादाओं को लांघने के विरूद्ध चेतावनी देते हुए एक बयान भी दिया और जनहित कानून के सीमांकन के लिये न्यायपीठ स्थापित करने के लिये कहा। जनहित याचिका गरीबों को न्याय प्रदान करने में उद्देश्यों की पूर्ति करती है लेकिन उसका इस्तेमाल शासन के विकल्प एवं कार्यपालिका और विधायिका की कानून बनाने की शक्तियों के विकल्प के तौर पर नहीं किया जा सकता। शासन का काम उनके पास रहना चाहिये जो शासन के लिये चुने गए हैं। इसके प्रत्युत्तर में भारत के मुख्य न्यायाधीश ने कहा कि नागरिकों के मौलिक अधिकारों के साथ कोई समझौता नहीं हो सकता और मौलिक अधिकार संविधान के मूल मूल्यों में है तथा संविधान का मूल सिद्धांत है।

आभार :- भारतीय सामाजिक वज्ञानं अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली के द्वारा मुझे "जनहित या चका एवं नव सामाजिक आन्दोलन:राजस्थान राज्य के वशेष संदर्भ में अध्ययन" वषय पर मुझे पोस्ट डॉक्टोरल फेलो शप आदेश क्रमांक **F.No.**3-22/2016-17/**PDF/SC** दिनांक 30.01.2017 के द्वारा प्रदान की गई एवं इसको पूर्ण करने के लए राजस्थान वश्व वधालय जयपुर के राजनीति वज्ञान वभाग की प्रोफ़ेसर डॉ मंजू कुमारी जैन का ह्रदय से आभार प्रकट करती हूँ, जिनके मार्गदर्शन व निर्देशन में यह कार्य सफलता पूर्वक पूर्ण कया I

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 1455
2. ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 298
3. ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 344
4. ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 344

5. ए.आई.आर. 1979 एस.सी. 1377
6. 1983 2 एस.सी.सी. 308
7. ए.आई.आर. 1983 एस.सी. 378
8. (1997) 10 एस.सी.सी. 549
9. 1987 एस.सी.आर. (1) 819
10. ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 3011
11. 196 ऑफ 2001 सिविल रिट पिटीशन
12. भारत के संविधान का अनुच्छेद 38
13. अनुच्छेद 14, एम.आर. बालाजी बनाम स्टेट ऑफ मैसूर, ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 649
14. अनुच्छेद 38(2) जैकब बनाम केरला वाटर अथॉरिटी (1991) 1 एस.सी.सी. 28
15. पी.यू.सी.एल. बनाम भारत संघ (2003) 4 एस.सी.सी. 399